REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 6 | MARCH - 2023

"राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्तों का अध्ययन"

डॉ. गायत्री मिश्रा[1] , राजकुमार हरिजन[2]
[1]प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).

सारांश –

भारतीय संविधान निर्मात्री सभा में नीति–निदेशक सिद्धान्तों की प्रकृति और स्थिति पर संविधान सभा की प्रारूप समिति के सभी सदस्यों ने अपने–अपने विचार व्यक्त किये तथा अन्तिम रूप से इन सिद्धान्तों को शासन के मूलभूत सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार कर संविधान में शामिल किया गया। ग्रेनविल आस्टिन का कहना है कि भारत का संविधान मूलतः एक सामाजिक प्रलेख है और इसके अधिकांश प्रावधान या तो प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक क्रान्ति के लक्ष्यों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनाये गये हैं अथवा उस क्रान्ति को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। इस क्रान्ति का लक्ष्य भारतीय संविधान के भाग 3 और भाग 4 में निहित दिखायी देता है और यह कहना गलत न होगा कि मूल अधिकार तथा नीति–निदेशक सिद्धान्त भारतीय संविधान की अन्तरात्मा है।

मुख्य शब्द – नीति–निदेशक, सिद्धान्त एवं भारतीय संविधान।

प्रस्तावना –

प्रत्येक लोककल्याणकारी राज्य का कर्तव्य है कि वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का सृजन करे जिसमें सभी नागरिकों का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक विकास सुनिश्चित हो सके। भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान के भाग–4 में कुछ ऐसे तत्वों का समावेश किया था जिनका उद्देश्य राज्यों को निर्देशित करना है कि किस प्रकार से भारतीय संविधान की उद्देशिका में निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता और न्याय की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त किया जाय। यद्यपि उद्देशिका में निहित समानता और न्याय का अर्थ अत्यंत व्यापक है, जिसमें मानवीय कल्याण से सम्बन्धित समस्त गतिविधियों को शामिल किया जा सकता है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 38 राज्य को निर्देशित करता है कि ''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा" तथा राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।" वास्तव में अनुच्छेद 38 में निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य एवं उद्देश्य अत्यंत व्यापक है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए प्रचुर मात्रा में संसाधनों की उपलब्धता तथा दीर्घकालीन प्रयास की आवश्यकता है।

भारतीय संविधान का भाग 4 कल्याणकारी राज्य का आधार है जो कि संविधान की उद्देशिका में वर्णित कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए राज्यों को व्यवहारिक निर्देश देता है। अनुच्छेद 37 के अनुसार राज्य के

नीति–निदेशक सिद्धान्त देश की शासन व्यवस्था के मूलाधार हैं और निश्चय ही विधि बनाने में इन सिद्धान्तों को लागू करना या इनको विधियों में शामिल करना राज्य का कर्तव्य होगा। संविधान सभा में बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि ''भाग 4 के नीति–निदेशक सिद्धान्तों का आशय यह नहीं है कि वे केवल पूजनीय घोषणाएँ ही बनकर रह जायें, बल्कि इसके बजाय ये अनुदेश के दस्तावेजों के रूप में हैं और जो भी सत्ता में आयेगा उसे इनका आदर करना होगा।''[1] भारतीय संविधान निर्माताओं ने इन सिद्धान्तों को इस आशा के साथ संविधान में शामिल किया था कि भविष्य की सरकारें इन सिद्धान्तों को यथासंभव लागू करेंगी तथा संविधान की प्रस्तावना में निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना का प्रयास करेंगी।

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति और संविधान लागू होने के छः दशकों में सरकार/राज्य भाग 4 के इन सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने में कहाँ तक सफल हुए हैं। वास्तव में नीति–निदेशक सिद्धान्तों के क्रियान्वयन की समस्या एक पुलिस राज्य को कल्याणकारी राज्य और संविधान द्वारा स्थापित राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक–आर्थिक लोकतंत्र में परिवर्तित करने की समस्या है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की अवधारणा एक अत्याधिक व्यापक अवधारणा है। इसमें मानवीय समाज के कल्याण से जुड़ी प्रत्येक गतिविधियाँ शामिल की जा सकती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि राज्य में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए प्रदेश की विभिन्न सरकारों द्वारा कौन–कौन सी योजनाएँ तथा नीतियाँ बनायी गयी हैं तथा कौन से कार्यक्रम संचालित किए गये/किए जा रहे हैं और संविधान के अनुच्छेद 38 में अन्तर्निहित लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है? तथा अनुच्छेद 38 के क्रियान्वयन में क्या बाधाएँ रही हैं? अध्ययन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शैक्षिक स्तर में सुधार के लिए बनायी गयी नीतियों एवं कार्यक्रमों, स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर में सुधार हेतु उठाये गये कदमों, राज्य के निर्धन और असहाय वर्गों को आर्थिक सहायता तथा प्रोत्साहन के लिए किए गये प्रयासों, जिसमें प्रमुख रूप से बच्चों के लिए, महिलाओं, वृद्धों, विकलांगों, कृषकों तथा अन्य कमजोर एवं असहाय वर्गों के कल्याण के लिए बनायी गयी योजनाओं का अध्ययन किया गया है।

विश्लेषण –

राजतन्त्रीय शासन व्यवस्थाओं में राज्य का कर्त्तव्य समाज में केवल शान्ति व्यवस्था बनाये रखना और जनता के प्राण, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की सुरक्षा तक ही सीमित माना जाता था, लेकिन वर्तमान समय में उक्त धारणा में आमूल परिवर्तन हो चुका है। आज हम कल्याणकारी राज्य के नागरिक हैं, जिसका कर्तव्य जनसाधारण के सुख एवं संवृद्धि की अभिवृद्धि करके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना करना है।[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक ऐसे संविधान की रूपरेखा तैयार की, जिसका लक्ष्य एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित राज्य की स्थापना करना था। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने संविधान के भाग 3 में नागरिकों के मौलिक अधिकार तथा भाग 4 में राज्य के लिए कुछ नीति–निदेशक सिद्धान्तों को शामिल किया था। इन्हें संविधान में शामिल करने के पीछे हमारे संविधान निर्माताओं की दूरदर्शिता थी। न्यायमूर्ति देशपाण्डे के अनुसार संविधान निर्माताओं ने अपनी सुविधानुसार कल्याणकारी उपबन्धों को दो भागों में तैयार किया। इसमें एक भाग, जिसे मौलिक अधिकार कहा जाता है, को न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय बनाया गया है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा करके व्यक्तिगत न्याय की स्थापना करना है। दूसरे भाग में राज्य के लिए कुछ निदेशक सिद्धान्तों को शामिल किया गया है, जिन्हें न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं बनाया गया है, परन्तु नीति–निदेशक सिद्धान्तों के अर्न्तगत ऐसे आदर्शों का उल्लेख किया गया है जिन्हें भावी राज्य यथासम्भव लागू करेंगे। अर्थात् राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्तों में ऐसे सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्तों को शामिल किया गया है जिनका पालन राज्य को करना अभीष्ट है। राज्य का यह कर्तव्य है कि जनता के सामाजिक हित और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए इनको यथाशक्ति कार्यान्वित करने का प्रयास करे।

नीति–निदेशक सिद्धान्तों में वे आदर्श निहित हैं, जिनको प्रत्येक सरकार अपनी नीतियों के निर्धारण और कानून बनाने में सदैव ध्यान में रखेगी। इसमें वे सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक सिद्धान्त निहित हैं जो भारत की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल है। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में ठीक ही कहा था कि ''ये

नीति–निदेशक सिद्धान्त भारतीय संविधान की 'अनोखी विशेषताएं' हैं। इनमें एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है।''[3] ग्रेनविल आस्टिन का कहना है कि राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्तों में सामाजिक क्रान्ति की झलक दिखायी देती है। उनका उद्देश्य भारतीय जनता को सकारात्मक अर्थों में स्वतन्त्र बनाना है। यह कहना गलत न होगा कि संविधान का भाग 4 अर्थात् नीति–निदेशक सिद्धान्त मूल अधिकारों के पूरक हैं।[4] भारतीय संविधान का कोई दूसरा भाग इतना महत्वपूर्ण नहीं होगा जितना कि भाग 4 है। संविधान के भाग 3 तथा भाग 4 में हमारे संविधान का दर्शन निहित है। भाग 4 उन आदर्शों का उल्लेख करता है, जिन्हें राज्य को प्राप्त करना है और उस प्रक्रिया को निर्धारित करता है, जिसके द्वारा उन आदर्शों की प्राप्ति हो सकती है। भाग 4 की उपेक्षा करने का अर्थ है संविधान द्वारा लगाए जीवनाधार, राष्ट्र को दिलाई गयी आशाओं और उन मूल आदर्शों की उपेक्षा करना, जिनके आधारों पर संविधान का निर्माण किया गया है।[5]

ग्रेनविल आस्टिन[6] के विचार में इन नीति–निदेशक सिद्धान्तों का लक्ष्य सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्यों की प्राप्ति करना है....। वे स्पष्ट करते हुए संप्रेषण करते हैं कि राज्य की इन सकारात्मक बाध्यताओं की सर्जना करके संविधान सभा ने भारत की भावी सरकारों को यह दायित्व सौंपा है कि वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और लोकहित के बीच अथवा कुछ थोड़े से लोगों की सम्पत्ति और उनके विशेषाधिकार बनाए रखने और सामान्य हित के लिए सभी मनुष्यों को समान रूप से शक्ति देकर उन्हें स्वतन्त्र कराने के उद्देश्य से उन्हें कुछ फायदे देने के बीच का मध्यम मार्ग खोजें।

ऐलन ग्लैडहिल के अनुसार, ''मौलिक अधिकार राज्य के लिए कुछ निषेध आज्ञाएँ हैं। इनके द्वारा राज्य को यह आदेश दिया गया है कि उसे लोगों के इन अधिकारों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्त इसके विरुद्ध यह बतलाते हैं कि राज्य को क्या करना है।''[7]

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान–निर्मात्री सभा में नीति–निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर्निहित उद्देश्यों के बारे में स्पष्टीकरण करते हुए निम्नांकित विचार व्यक्त किया था – ''निदेशक तत्वों का आशय यह नहीं है कि वे केवल पूजनीय घोषणाएँ बनकर रह जायें। इसके बजाय ये अनुदेशों के दस्तावेज के रूप में हैं और जो भी सत्ता में आयेगा, उसे इनका आदर करना होगा।''[8]

1937 में आयरलैण्ड में जिस संविधान का निर्माण किया गया, उसमें न केवल नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी, वरन् सामाजिक नीति के कुछ सिद्धान्त भी निर्धारित किए गये थे। आयरलैण्ड के संविधान में शामिल सिद्धान्त राज्य के लिए सामाजिक नीति के सिद्धान्त थे जिनकी प्रकृति सामान्यतया निर्देशात्मक थी, लेकिन जब इन्हें भारतीय संविधान में शामिल किया गया तो इनमें आंशिक परिवर्तन करके भारतीय संविधान में इन्हें सामाजिक और आर्थिक तत्वों के रूप में शामिल किया गया।[9]

सर बी.एन. राव द्वारा सर्वप्रथम इन सिद्धान्तों को भारतीय संविधान में शामिल करने का सुझाव दिया गया था, उसके बाद मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित उप समिति ने बहुमत से यह निर्णय लिया कि नीति–निदेशक सिद्धान्तों से सम्बन्धित भाग को एक अलग भाग में रखा जाय और 30 नवम्बर 1947 को प्रारूप समिति ने नीति–निदेशक सिद्धान्तों को अलग भाग में हस्तान्तरित किया तथा नीति–निदेशक सिद्धान्तों का वर्तमान स्वरूप निर्धारित किया गया।[10]

भारतीय संविधान में राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण भाग 4 तथा अनुच्छेद 36 से 51 के मध्य किया गया है। इन सिद्धान्तों में भारतीय संविधान का दर्शन निहित है। इनका उद्देश्य उस सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति के उद्देश्यों को पूरा करना है, जो स्वतन्त्रता के समय अधूरे रह गये थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने संविधान सभा में कहा था कि 'राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्तों का उद्देश्य जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है।'[11] इन नीति–निदेशक सिद्धान्तों को भारतीय संविधान के लिए तेज बहादुर सप्रू समिति द्वारा तैयार किया गया था।

संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित 'लोकहितकारी राज्य' एवं समाजवादी समाज की स्थापना का आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि सरकारें इन नीति–निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयत्न करेंगी। राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्त राज्य और सरकारों के मार्गदर्शी सिद्धान्त हैं जिनका उद्देश्य राज्य और सरकारों का निर्देशन करना है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता का समय था, क्योंकि लम्बी परतंत्रता के बाद भारत को स्वतन्त्रता मिली और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राज्य व सरकारें इतनी सक्षम नहीं थीं कि वे अपने नागरिकों की सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति

कर सकतीं, क्योंकि राज्य के पास पर्याप्त संसाधन नहीं थे। इसलिए संविधान निर्माताओं ने संविधान में ऐसे तत्वों को शामिल किया, जिन्हें राज्य को यथासंभव लागू करना होगा। यद्यपि इनके पीछे कोई न्यायिक बाध्यकारी शक्ति नहीं है, फिर भी ये नीति–निदेशक सिद्धान्त राज्यों के कर्त्तव्य के रूप में हैं।[12]

डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में, "संविधान निर्माताओं का यह उद्देश्य नहीं था कि आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना के लिए संविधान में एक ठोस प्रोग्राम का उल्लेख किया जाय, बल्कि उनकी यह इच्छा थी कि प्रत्येक सरकार आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना के लिए प्रयास करेगी। इसी उद्देश्य से संविधान के चौथे भाग में कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है और यह आशा व्यक्त की गयी है कि सरकार अपनी नीतियों का निर्माण करते समय यथासंभव इन नीतियों कर पालन करेगी।"[13]

निष्कर्षः

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नीति–निदेशक सिद्धान्त राज्यों के लिए पथप्रदर्शक हैं, जो राज्य को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए निर्देशित करते हैं कि किस प्रकार भेदभाव रहित समाज की स्थापना की जाय तथा किस प्रकार से नागरिकों का आर्थिक सशक्तीकरण किया जाय, जिससे समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना की जा सके। राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्तों में इन सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने की एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की गयी है।

संदर्भ –

1. कांस्टीट्यूशनल एसेम्बली डिबेट, 1948, वाल्यूम VII, पृष्ठ 41.
2. जैन, एम.पी. – कांस्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया, बाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 669.
3. कांस्टीट्यूनल एसेम्बली डिबेट्स, वाल्यूम VII, 1948, पृष्ठ 473.
4. ग्रेनविल, आस्टिन – दि इंडियन कांस्टीट्यूशन – कार्नर स्टोन आफ ए नेशन, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1966, पृष्ठ 50–52.
5. हेगड़े, के. एस. – डायरेक्टिव प्रिंसपल ऑफ स्टेट पालिसी, नेशनल दिल्ली,1972, पृष्ठ 69.
6. ग्रेनविल आस्टिन – पूर्वोक्त, पृष्ठ 56.
7. काश्यप, सुभाष – हमारा संविधान, नेशनल पब्लिशर्स, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 123.
8. कांस्टीट्यूशनल एसेम्बली डिबेटस, वाल्यूम VII, 1948, पृष्ठ 480.
9. मारकण्डन, के. सी. – डायरेक्टिव प्रिंसिपल ऑफ स्टेट पालिसी इन इंडियन कांस्टीट्यूशन, ए.बी.एस. पब्लिकेशन, जालन्धर, 1987, पृष्ठ 24.
10. लास्कर, इस्लाम सिराजुल – डायरेक्टिव प्रिंसिपल ऑफ स्टेट पालिसी इन इंडियन कांस्टीट्यूशन, दीप एण्ड दीप, दिल्ली, 1988. पृष्ठ 23.
11. कांस्टीट्यूशनल एसेम्बली डिबेट, वाल्यूम VII, 6 दिसम्बर 1949, पृष्ठ 132.
12. पायली, एम. वी. – भारतीय संविधान – एक परिचय, विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 110.
13. कांस्टीट्यूशनल एसेम्बली डिबेट, वाल्यूम VII, 25 नवम्बर 1948, पृष्ठ 596.